Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 1 | (Jan – Mar 2026)

गीताश्री की कहानियों में स्त्री अस्मिता, अधिकार और आत्मनिर्णय की चेतना : एक स्त्रीवादी दृष्टिकोण

डॉ. नीता त्रिवेदी[1], शक्ति वर्धन आर्टिस्ट [2]
[1] सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
[2] शोधार्थी, हिंदी विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध सार

यह शोध-पत्र समकालीन हिंदी कथा-साहित्य की प्रमुख लेखिका गीताश्री की कहानियों में उपस्थित स्त्री अस्मिता, अधिकार और आत्मनिर्णय की चेतना का स्त्रीवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है। भारतीय समाज की पारंपरिक पितृसत्तात्मक संरचना ने स्त्री को सदैव एक सीमित भूमिका में बाँधने का प्रयास किया है जहाँ उसकी देह, उसकी यौनिकता, उसकी इच्छा और उसके निर्णय सभी समाज की स्वीकृति पर निर्भर माने गए हैं। किंतु गीताश्री की कहानियाँ इस संरचना को भीतर से चुनौती देती हैं। यह अध्ययन इस बात पर विशेष बल देता है कि गीताश्री की स्त्रियाँ विद्रोह की पारंपरिक छवि को त्यागकर एक आंतरिक, सूक्ष्म और गहरे स्तर पर प्रतिरोध रचती हैं। यह प्रक्रिया केवल साहित्यिक कल्पना नहीं बल्कि स्त्री अनुभव की सामाजिक, वैचारिक और संवेदनात्मक यथार्थता को प्रतिबिंबित करती है।

बीज शब्द- स्त्री अस्मिता, आत्मनिर्णय, स्त्री चेतना, देह विमर्श, पितृसत्ता, स्त्रीवादी दृष्टिकोण, समकालीन स्त्री लेखन, आत्मबोध, स्त्री स्वतंत्रता।

मूल आलेख-

हिंदी साहित्य में स्त्रीवादी लेखन ने जिस सशक्तता के साथ स्त्री की चेतना, अस्मिता और अधिकार के प्रश्नों को उठाया है, उसमें समकालीन महिला कथाकारों की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन लेखिकाओं ने स्त्री को मात्र पीड़िता के रूप में नहीं अपितु निर्णयकारी, जुझारू और आत्मनिर्भर इकाई के रूप में प्रस्तुत किया है। महादेवी वर्मा लिखती है- "भारतीय नारी जिस दिन अपने संपूर्ण प्राण-प्रवेग से जाग उठे उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं। उसके अधिकारों के संबंध में यह बात सत्य है कि वे भिक्षादान से न मिले और न मिलेंगे क्योंकि स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तु से भिन्न है।"[1]

"आज के समय में स्त्री-विमर्श साहित्य का एक प्रमुख और ज्वलंत मुद्दा बन चुका है। बीसवीं सदी के मुक्ति आंदोलनों में स्त्री मुक्ति आंदोलन सबसे अधिक प्रभावी और सार्वभौमिक रहा है क्योंकि यह दुनिया की आधी आबादी के स्वर से जुड़ा हुआ था। स्त्री-विमर्श ने न केवल स्त्री की स्वतंत्रता को चुनौती दी बल्कि इसने उस खामोशी को तोड़ा है जो सदियों से स्त्री के अस्तित्व को दबा कर रखती थी। इस विमर्श ने पितृसत्तात्मक मूल्यों, वर्जनाओं और सामाजिक मानदंडों पर गहन विचार और विश्लेषण किया है।"[2] गीताश्री इसी परंपरा की एक सशक्त और सजग लेखिका हैं, जिन्होंने नारी जीवन की जटिलताओं, मानसिक द्वंद्वों, सामाजिक बंधनों और आत्मनिर्णय की प्रक्रिया को अत्यंत संवेदनशीलता और विचारशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है।

स्त्री अस्मिता, अधिकार और आत्मनिर्णय का प्रश्न भारतीय साहित्यिक विमर्श में सदैव से एक जटिल और बहुस्तरीय विषय रहा है। भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक संरचना ने स्त्री को उसके अस्तित्व, स्वायत्तता और चेतना से वंचित रखने की एक लम्बी प्रक्रिया अपनाई है। सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक व्यवस्था में स्त्री की भूमिका को सदैव सीमित करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि साहित्य ने विभिन्न कालखण्डों में स्त्री को केंद्र में रखकर उसके अनुभवों, संघर्षों और प्रतिरोध को स्वर

दिया है फिर भी उसकी अस्मिता और अधिकार के प्रश्न को पूरी गंभीरता के साथ आधुनिक युग में ही स्थान मिला। इस आधुनिक युगीन विमर्श में 'स्त्रीवाद' एक विचारधारा के रूप में उभरता है जो केवल स्त्रियों की समानता की मांग नहीं करता अपितु उनके व्यक्तित्व और निर्णय की स्वायत्तता को भी रेखांकित करता है।

गीताश्री की कहानियाँ आज के समाज में व्याप्त स्त्री विरोधी संरचनाओं को चुनौती देती हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री आत्म-चेतस है, जो अपने निर्णय स्वयं लेती है, अपने शरीर, जीवन और संबंधों पर अधिकार जताती है और परंपरागत बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा करती है। कोन्हार घाट की फुआ कहती है— "बाबूजी हमको मंदिर नहीं चाहिए का करेंगे मंदिर का। देश में बहुत मंदिर हैं। एक दो और बनवाकर भीड़ क्यों बढ़ाना चाहते हैं। बसियत में कुछो लिखा है सब कुछ वही लोग तय करेंगे का। हमको अपनी मर्जी से जीना है आगे। हमको अब अपने लिए नहीं जीना। हमको जीने का उद्देश्य मिल गया है बाबूजी।"[3]

उनकी कहानियाँ स्त्री को एक जीवंत सामाजिक इकाई के रूप में प्रस्तुत करती हैं जो प्रेम, पीड़ा, यौनिकता, मातृत्व, अकेलापन, आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता जैसे अनुभवों से होकर गुजरती है। गीताश्री की लेखनी एक ओर जहां स्त्री की पीड़ा को स्वर देती है, वहीं दूसरी ओर उसे अपनी मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर भी करती है। 'गोरिल्ला प्यार' कहानी की अर्पिता अपने अस्तित्व को स्वीकार करते हुए कहती है कि— "मेरा इसमें विश्वास नहीं। जिंदगी एक ही बार मिलती है। हम उसे दूसरों की हिसाब से जीने में खर्च कर देते हैं। फिर सब मर जाते हैं एक दिन। हम भी और वो भी.... मेरे इस जीने के तरीके में स्पष्टता रहेगी, कोई छिपाव नहीं, कोई कालातीत प्रतिबद्धता नहीं।"[4]

स्त्रीवादी दृष्टिकोण से गीताश्री की कहानियाँ उस विमर्श को विस्तार देती हैं जो स्त्री की निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में उपस्थिति, अधिकार और सहभागिता को लेकर है। यह कहानियाँ स्त्री को 'अन्य' के रूप में नहीं बल्कि अपने 'स्व' के साथ प्रस्तुत करती हैं जहाँ वह निर्णय ले सकती है कि उसे क्या स्वीकार करना है और क्या त्यागना है। इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य गीताश्री के कथा साहित्य का स्त्रीवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण करते हुए यह समझना है कि उनकी कहानियाँ स्त्री की अस्मिता, अधिकार और आत्मनिर्णय की चेतना को किस प्रकार प्रस्तुत करती हैं। यह अध्ययन न केवल साहित्यिक गहराई को स्पष्ट करेगा अपितु सामाजिक चेतना और स्त्रीवादी विमर्श की उस धारा को भी रेखांकित करेगा जो गीताश्री के लेखन को विशिष्ट बनाती है।

भारतीय समाज की सांस्कृतिक संरचना ने स्त्री को एक विशेष 'भूमिका' में बाँधकर देखा है, जिसमें उसके अस्तित्व का आधार दूसरों के लिए समर्पित होना ही माना गया है। गीताश्री की कहानियाँ इस लंबे सांस्कृतिक अन्याय को भीतर से तोड़ने का कार्य करती हैं। उनकी स्त्रियाँ इतिहास से आए बोझ को ढोती तो हैं लेकिन उसमें दबकर जीती नहीं हैं। वे अपनी अस्मिता की तलाश एक ऐसी दुनिया में करती हैं जहाँ उनकी आवाज़ें वर्षों तक दबाई जाती रही हैं। यह तलाश धीरे-धीरे जागती हुई आत्मबोध की आग है, जो भीतर से कभी स्मृतियों में, कभी संबंधों में तो कभी अपने ही शरीर और मन के द्वंद्वों में जलती रहती है। अस्मिता यहाँ केवल पहचान का प्रश्न नहीं है, यह एक गहरी जीवन-दृष्टि है जो स्त्री को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि वह कौन है, क्यों है और किसके लिए है।

'प्रश्न कुंडली' कहानी में लेखिका ने पति-पत्नी संबंधों के विघटन को शिवांगी और रिमझिम के माध्यम से प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया है, जहाँ सामाजिक अंधविश्वासों की जड़ता इस कदर गहरी है कि शिक्षित वर्ग भी उन्हें सहज रूप से स्वीकार कर लेता है और मानसिक संतुलन के विचलित होते ही व्यक्ति ज्योतिषीय समाधान की ओर उन्मुख हो जाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में सी यू की नायिका सुषमा दुबे एक ऐसी स्त्री के रूप में उभरती है, जो अपनी शर्तों पर जीवन जीने का साहस रखती है जबकि मलाई कहानी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत लड़कियों पर थोपे गए पारंपरिक अत्याचारों को रेखांकित करती है, जिन्हें नायिका सुरेलिया बचपन से ही झेलती आती है।

लाल पीली डायरी कहानी स्त्री मौन के भीतर की हलचल को पकड़ने का प्रयास हैं, जहाँ स्त्री अपने अंतर्मन की घुटन को शब्दों के ज़रिए खोलती है। वह स्वयं को किसी के विरुद्ध नहीं अपने पक्ष में खड़ा करने का साहस जुटाती है। यह आत्मबोध उस समय और भी सघन हो उठता है जब स्त्री अपने भीतर की परतों को पहचानने लगती है। गीताश्री इन शब्दों के भीतर छिपी हुई सत्ता को पहचानती हैं और उनकी कहानियाँ इन प्रतीकों को नए सन्दर्भ में समझाती हैं। जीरो माइल कहानी की राजवंती अपनी अस्मिता को खोजती है।

उनके लिए अस्मिता का प्रश्न न तो किसी पुरूष-विरोध की प्रतिक्रिया है और न ही किसी सत्ता को छीन लेने की आकांक्षा बल्कि यह तो वह आंतरिक 'स्व' है, जिसे स्त्री ने वर्षों से दूसरों के लिए स्थगित कर रखा था। "वह अनजान औरत कहानी में उन्होंने स्त्री के अस्तित्व को स्वीकारते हुए लिखा है कि "ये जिंदगी जीने के लिए होती है, रोने के लिए नहीं। अपने सपने पूरे करने के लिए हमें जीना होता है। मौत कदम-कदम पर हमारे सामने खड़ी है।"[5]

गीताश्री की कहानियों में देह केवल यौनिक अभिव्यक्ति का साधन नहीं बल्कि सामाजिक सत्ता से टकराने का माध्यम भी है। नामर्दी की दवा वाया लेडीज़ सर्कल कहानी इस परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रभावशाली हैं। इस कहानी में स्त्री जब अपने वैवाहिक जीवन में यौनिक अपूर्णता का अनुभव करती है तो वह चुप नहीं रहती न ही वह केवल पीड़िता बनती है, बल्कि वह उस यौनिक असंतोष का प्रश्न बनाकर समाज के सम्मुख रखती है। लेकिन यह प्रश्न स्त्री के अधिकार का स्पष्ट उद्घोष बनता है। यह उद्घोष साहसिक है क्योंकि वह सीधे उस क्षेत्र को छूता है जिसे समाज 'निजी' कहकर स्त्री को मौन बनाए रखने की शिक्षा देता है। गीताश्री की नायिका इस मौन को तोड़ती है वह अपने भीतर की इच्छा, अस्वीकृति और प्रश्न को वैध मानती है और इसी के ज़रिए अपनी अस्मिता की पुनर्स्थापना करती है।

स्त्री के लिए देह और आत्मा दो पृथक क्षेत्र नहीं बल्कि एक ही अस्तित्व के दो पक्ष हैं और जब वह देह पर अपने अधिकार को समझ लेती है, तभी वह आत्मा को स्वतंत्र कर पाती है। यही वह क्षण होता है जब वह अपने जीवन के प्रत्येक निर्णय में स्वयं को केन्द्र में रखती है, न कि किसी सामाजिक अपेक्षा या संबंध के दबाव में। गीताश्री की कहानियाँ इस अधिकारबोध को केवल वैचारिक नहीं अनुभवजन्य बनाती हैं। यह स्वतंत्रता उसे आत्मनिर्णय की शक्ति देती है। "रूपा को लगा इन बाहों में कितना भरोसा, कितनी उम्मीद, कितनी सांत्वना भरी हुई है। इन बाहों में दैहिक उत्तेजना का ताप नहीं है। ये कुछ माँगती नहीं, देती हैं।"[6]

भारतीय सामाजिक संरचना में विवाह को एक पवित्र संस्था के रूप में देखा गया है, जहाँ स्त्री की भूमिका तयशुदा और लगभग अपरिवर्तनीय मानी गई है। उसे सहनशील, समर्पित और मौन रहने वाली इकाई के रूप में देखा जाता है, जो संबंधों को टिकाए रखने की नैतिक ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर ढोती है। गीताश्री की कहानियाँ इसी परंपरागत वैवाहिक ढांचे को भीतर से खंगालती हैं। उनकी नायिकाएँ उन संबंधों में जी रही होती हैं, जो बाहर से सुरक्षित, स्थिर और सुसंस्कृत प्रतीत होते हैं लेकिन भीतर से घुटन, खालीपन और आत्महीनता से भरपूर होते हैं। ये स्त्रियाँ संबंधों को तोड़ने के लिए उतावली नहीं होतीं पर वे संबंधों में बने रहकर अपनी आत्मा का क्षरण भी नहीं होने देतीं।

अन्हरिया रात बैरनिया हो राजा कहानी इस मौन को सबसे सशक्त उपकरण के रूप में सामने लाती हैं, जहाँ स्त्री बाहर से शांत दिखती है पर भीतर उसका प्रतिरोध धीरे-धीरे आकार ले रहा होता है। यह प्रतिरोध कभी विद्रोह की शक्ल में नहीं आता पर वह स्त्री को भीतर से इतना सक्षम बना देता है कि वह अपने जीवन के सबसे कठिन निर्णय बिना किसी घोषणा के ले सकती है। गीताश्री की लेखनी इस मौन की गहराई को पहचानती है, वह चुप्पी को संवाद की एक नई भाषा बना देती है। एक ऐसी भाषा जो स्त्री के लिए जितनी निजी है, उतनी ही राजनीतिक भी। वह इस मौन में स्त्री की सामाजिक चेतना की उपस्थिति देखती हैं क्योंकि चुप्पी में पनपता निर्णय किसी भी मुखर घोषणापत्र से अधिक क्रांतिकारी होता है।

गीताश्री की कहानियों में चित्रित है कि प्रेम, साझेदारी और स्नेह जैसे भाव तब ही टिक सकते हैं, जब दोनों पक्ष समान चेतना और सम्मान के साथ उनमें भाग लें। जब यह संतुलन टूटता है तब संबंधों में चुप्पी, संकोच और खोखलापन जन्म लेते हैं। लेकिन गीताश्री की स्त्रियाँ इस खोखलेपन को नज़रअंदाज़ नहीं करतीं, वे उसे स्वीकार कर अपने जीवन में नया अर्थ तलाशने लगती हैं। कभी यह अर्थ अकेले जीवन के रूप में आता है, कभी एक नई दिशा में जाने की इच्छा के रूप में, तो कभी एक नए संबंध की शुरुआत के रूप में। इन सभी अवस्थाओं में स्त्री के भीतर जो बदला होता है वह केवल उसका परिवेश नहीं उसका आत्मबोध और आत्मविश्वास होता है।

स्त्री के आत्मनिर्णय की प्रक्रिया को अक्सर बाहरी प्रतिक्रियाओं और सामाजिक विरोधों के चश्मे से देखा जाता है, जबकि वास्तविक संघर्ष उसकी आंतरिक चेतना में घटित होता है। गीताश्री की कहानियाँ इस आंतरिक संघर्ष को अत्यंत संवेदनशीलता से पकड़ती हैं। उनकी नायिकाएँ कोई घोषणा नहीं करतीं, कोई विद्रोही मुद्रा नहीं अपनातीं फिर भी वे अपने निर्णयों में गहरी दृढ़ता और विवेक का परिचय देती हैं। डाऊनलोड होते हैं सपने कहानी में सुमित्रा झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाली ऐसी लड़की है जो नवीन चेतना सम्पन्न है। सुमित्रा के बारे में उसकी मालकिन कहती है कि— "जरा तेवर तो देखो...रहेगी झुग्गी में और सपने देखेगी बड़े-बड़े।"[7]

प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ कहानी संग्रह की प्रत्येक कहानी नारी-जीवन के यथार्थ, अस्तित्व की मनोकामना आदि की कहानी है। इस कहानी संग्रह की सभी नायिकाएँ परम्परागत रूढ़ियों पर न चलकर अपने लिए नया मार्ग चुनती हैं। इस कहानी संग्रह की प्रथम कहानी प्रार्थना के बाहर है। इसकी नायिका प्रार्थना अपनी रूममेट रचना से कहती है, "देख रचना तू नहीं समझ पाएगी ये सब। मैं समझाना भी नहीं चाहती। बस इतना समझ ले मेरे लिए यह कुठाओं से मुक्ति का मार्ग है।"[8]

सोनमछरी कहानी में रूपा के आत्मनिर्णय को प्रस्तुत किया गया है। उसका पहला पति शंकर गंगा की लहरों में समा जाता है, तो अमित दास उसे सहारा देता है। एक साल के बाद शंकर की वापसी का संदेश मिलता है, तो रूपा का दिल बैठने लगता है। उसे लगता अमित दास का साथ अब छूट जाएगा। "क्या ये आखिरी बार उसे छू रहे हैं। ये अंतिम भरोसा, अंतिम उम्मीद, अंतिम सांत्वना है...। अमित की आवाज काँपकर रही है...तुम क्या करोगी रूपा। छोड़ दोगी हमें...वापस शंकर के पास जाओगी...नहीं नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकती...अब मैं हूँ तुम्हारा साथी, तुम हो मेरी सब कुछ।"[9] रूपा अंत में अमित को अपना कर अपने आत्मनिर्णय पर कायम रहती है।

गीताश्री की कहानियाँ यह भी दिखाती हैं कि आत्मनिर्णय तब तक अधूरा होता है जब तक वह सामाजिक धरातल पर उतर कर अपने प्रभाव को न दर्शाए। निर्णय केवल मानसिक सहमति नहीं यह एक ठोस, जीवंत कदम है जो स्त्री अपनी पहचान की पुष्टि के लिए उठाती है। उनकी नायिकाएँ जब विवाह, संबंध या जीवनशैली से बाहर निकलने का निर्णय लेती हैं तो वे स्वयं को बचाने या छुपाने की नहीं बल्कि खुलकर जीने की दिशा में आगे बढ़ती हैं। समाज इसके लिए उन्हें दोषी ठहराता है, उन्हें असहज करता है लेकिन गीताश्री की नायिकाएँ इन असहजताओं को बाहरी दबाव के रूप में नहीं देखतीं, वे उन्हें अपनी आत्मनिर्भरता की पुष्टि मानती हैं।

स्त्री का आत्मनिर्णय उसके जीवन का अंतिम उत्तर नहीं होता, बल्कि वह कई नए प्रश्नों जैसे- अब वह कैसे जिएगी? किसके साथ? किन मूल्यों पर? आदि को जन्म देता है। गीताश्री की नायिकाएँ उन प्रश्नों को स्वीकार कर उनकी दिशा में अपने उत्तर स्वयं गढ़ती हैं। जब कोई स्त्री अपने आत्मनिर्णय की प्रक्रिया से गुज़रती है, तो वह एक निजी संघर्ष का अनुभव करती है। परंतु यह संघर्ष पूरी तरह अकेला नहीं होता, वह अपनी जैसी अनेक स्त्रियों की याद, पीड़ा, साहस और अनुभवों से भीतर ही भीतर जुड़ी होती है। यही जुड़ाव उसे सामूहिक चेतना का हिस्सा बनाता है।

गीताश्री की नायिकाएँ प्रत्येक कठिन परिस्थिति में आत्मनिर्णय का परिचय देती हैं। एकान्त कहानी की शालिनी कहती है कि "मैं गुड़गांव शिफ्ट हो रही हूँ...मैं अकेली रहना चाहती हूँ कुछ दिन।"[10] शालिनी का यौन-शोषण होता है। अब वह

परिवार पर बोझ न बनकर अकेली गुड़गांव शिफ्ट होकर नौकरी करना चाहती है। साथ ही वह उस अत्याचारी पुरुष से बदला भी लेना चाहती है। गीताश्री की कहानियाँ इस सामूहिक स्त्री-चेतना की एक मजबूत और अदृश्य रेखा खींचती हैं। चाहे वे स्त्रियाँ भिन्न आयु, वर्ग, शिक्षा या स्थान से आती हों, उनके भीतर एक समान जिजीविषा, समान असहमति और समान सवाल उठते हैं। लेडीज़ सर्कल कहानी जब स्त्रियों के निजी अनुभवों को साझा करती हैं; तो वह सिर्फ करुणा या सहानुभूति का मंच नहीं बनतीं, वरन् सामूहिक निर्णय की तैयारी का एक मौन, ठोस आधार बनती हैं। इस प्रकार की कहानियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि स्त्री विमर्श की शक्ति केवल व्यक्तिगत मुक्ति में नहीं बल्कि उस साझा अनुभव में है, जो एक नई सामाजिक कल्पना का निर्माण कर सकती है।

इन कहानियों में केवल वर्तमान स्त्री नहीं आने वाली स्त्रियों के लिए भी स्थान है। गीताश्री की स्त्रियाँ जब कोई निर्णय लेती हैं, तो वे स्वयं को ही नहीं भविष्य की उन स्त्रियों को भी एक राह देती हैं जो अभी प्रश्न पूछने से डरती हैं, जो अभी संबंधों को ईश्वर मान बैठी हैं या जो अभी तक यह मानती हैं कि त्याग ही स्त्रीत्व की अंतिम परिणति है। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ किसी काल विशेष में कैद नहीं लगतीं वरन् वे हर समय के लिए प्रासंगिक होती हैं क्योंकि स्त्री का संघर्ष बदलता भले रहे पर उसकी बुनियादी संरचना और सत्ता-संबंध अब भी अपरिवर्तित हैं। यह गीताश्री की कहानियों को साहित्य के दायरे से बाहर लाकर सामाजिक हस्तक्षेप के एक सशक्त उपकरण में बदल देती है।

उनकी लेखनी यह भी प्रस्तावित करती है कि स्त्री को अब केवल प्रश्न उठाने वाली नहीं रहना चाहिए, वह स्वयं अपने उत्तर भी गढ़ सकती है। यह उत्तर किसी एक निर्णय से नहीं बल्कि दीर्घकालिक आत्म-निर्माण की प्रक्रिया से जन्मता है। परी हो बला हो एवं एकांत की नायिकाएँ जब अपने निर्णय लेती हैं तो वे समाज से स्वीकृति की अपेक्षा नहीं करतीं। अंततः गीताश्री की कहानियाँ वैकल्पिक मानवीयता की रचना हैं, जिसमें स्त्री अपने अनुभवों को साहित्यिक सौंदर्य नहीं सामाजिक हस्तक्षेप की भाषा बनाती है। उनके पात्र जब निर्णय लेते हैं तो वे केवल कथा के पात्र नहीं रहते वे प्रतिमान बनते हैं, जो यह दिखाते हैं कि मुक्ति केवल आंदोलन या व्यवस्था से नहीं आती वह भीतर से जागी हुई चेतना से आती है। यही चेतना गीताश्री की स्त्रियों को साधारण से असाधारण बनाती है और उनके माध्यम से हम उस स्त्री को पहचान पाते हैं; जो न केवल अपनी कहानी कहती है, बल्कि अपनी शर्तों पर जीवन जीती है।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त समग्र विश्लेषण के आलोक में यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया जा सकता है कि गीताश्री का कथा-साहित्य समकालीन हिंदी स्त्री-विमर्श में एक सशक्त वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में उभरता है, जहाँ स्त्री को परंपरागत 'अन्य' की अवधारणा से विमुक्त कर एक आत्मनिर्णयशील, चेतन और स्वायत्त सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। उनकी कहानियाँ स्त्री-अनुभवों की बहुस्तरीय जटिलताओं को सूक्ष्म संवेदनात्मक दृष्टि के साथ उद्घाटित करते हुए यह सिद्ध करती हैं कि स्त्री अस्मिता का निर्माण बाह्य संरचनाओं के प्रतिरोध भर से संभव नहीं, अपितु आत्मबोध, आत्मस्वीकृति और निर्णयात्मक क्षमता के अंतर्संबंधित विकास से संभव होता है। गीताश्री का लेखन स्त्री के अंतर्मन में निहित द्वंद्वों, चुप्पियों और अस्मितामूलक संघर्षों को वैचारिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है, जिससे स्त्री अपने अस्तित्व को पुनर्परिभाषित करने में समर्थ होती है। इस प्रकार उनका कथा-संसार स्त्री को निष्क्रिय उपस्थिति से सक्रिय सृजनात्मक शक्ति में रूपांतरित करता है।

संदर्भ सूची-

1. वर्मा, महादेवी। (2015)। श्रृंखला की कड़ियाँ। नई दिल्ली : लोक भारती प्रकाशन। पृ. 9।
2. सगीतरा, कन्हैया लाल। (2025)। डॉ. सुधा अरोड़ा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श और सामाजिक परिवर्तन। आईजेआईआरसीटी ऑनलाइन ई-पत्रिका, वॉल्यूम-11। ISSN: 2454-5988।

3. गीताश्री। (2017)। डाउनलोड होते हैं सपने। दिल्ली : शिल्पायन प्रकाशन। पृ. 26।
4. गीताश्री। (2013)। प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ। दिल्ली : वाणी प्रकाशन। पृ. 42।
5. गीताश्री। (2019)। भूत-खेला। दिल्ली : वाणी प्रकाशन। पृ. 76।
6. गीताश्री। (2013)। प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ। दिल्ली : वाणी प्रकाशन। पृ. 42।
7. गीताश्री। (2017)। डाउनलोड होते हैं सपने। दिल्ली : शिल्पायन प्रकाशन। पृ. 26।
8. गीताश्री। (2013)। प्रार्थना के बाहर। दिल्ली : वाणी प्रकाशन। पृ. 25।
9. गीताश्री। (2013)। प्रार्थना के बाहर : सोनमछरी। दिल्ली : वाणी प्रकाशन। पृ. 38–39।
10. गीताश्री। (2018)। लेडीज़ सर्कल। दिल्ली : राजपाल एंड संस। पृ. 116।